भीष्म स्तुति

प्रथम स्कंध - अध्यायः ९

बाण शैय्या पर सोते हुए पितामह भीष्म अपने सम्मुख खड़े हुए चतुर्भुज सुंदर रूप वाले श्री कृष्ण के दर्शन करते हुए, शस्त्रों के प्रहार की पीड़ा को भूल कर अत्यन्त प्रेम पूर्वक भगवान की स्तुति कर रहे हैं।

श्रीभीष्म उवाच:

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥३२॥

अब मृत्यु के समय में अपनी यह बुठि, जो अनेक प्रकार के साधनों का अनुष्ठान करने से अत्यन्त शुद्ध एवं कामनारहित हो गयी हैं, यदुवंश - शिरोमणि अनन्त भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित करता हूँ, जो सदा-सर्वदा अपने आनन्दमय स्वरूप में स्थित रहते हुए ही कभी विहार करने की - लीला करने की इच्छा से प्रकृति को स्वीकार कर लेते हैं, जिससे यह सृष्टि-परम्परा चलती हैं ॥३२॥

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने ।
वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥३३॥

जिनका शरीर त्रिभुवन-सुन्दर एवं श्याम तमाल के समान साँवला हैं, जिस पर सूर्य रश्मियों के समान श्रेष्ठ पीताम्बर लहराता रहता हैं और कमल-सदृश मुख पर घुंघराली अलकें लटकती रहती हैं, उन अर्जुन-सखा श्रीकृष्ण में मेरी निष्कपट प्रीति हो ॥३३॥

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्-कचलुलितश्रमवार्यलङ्कृतास्ये ।
मम निशितशरैर्विभिद्यमान-त्वचिविलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥३४॥

मुझे युद्ध के समय की उनकी वह विलक्षण छवि याद आती हैं। उनके मुख पर लहराते हुए घुँघराले बाल घोड़ों की टाप की धूल से मटमैले हो गये थे और पसीने की छोटी छोटी बूँदें शोभायमान हो रही थीं। मैं अपने तीखे बाणों से उनकी त्वचा को बींध रहा था। उन सुन्दर कवचमण्डित भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति मेरा शरीर, अन्तः करण और आत्मा समर्पित हो जायँ ॥३४॥

भीष्म स्तुति

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ।
स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥३५॥

अपने मित्र अर्जुन की बात सुनकर, जो तुरंत ही पाण्डव-सेना और कौरव-सेना के बीच में अपना रथ ले आये और वहाँ स्थित होकर जिन्होंने अपनी दृष्टि से ही शत्रुपक्ष के सैनिकों की आयु छीन ली, उन पार्थसखा भगवान् श्रीकृष्ण में मेरी परम प्रीति हो ॥३५॥

व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्य दोष बुद्ध्या।
कुमतिमहरदात्मविद्यया य-श्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥३६॥

अर्जुन ने जब दूर से कौरवों की सेना के मुखिया हम लोगों को देखा, तब पाप समझकर वह अपने स्वजनों के वध से विमुख हो गया। उस समय जिन्होंने गीता के रूप में आत्मविद्या का उपदेश करके उसके सामायिक अज्ञान का नाश कर दिया, उन परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में मेरी प्रीति बनी रहे ॥३६॥

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा-मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु-र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥३७॥

मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं श्रीकृष्णको शस्त्र ग्रहण कराकर छोड़ूँगा; उसे सत्य एवं ऊँची करनेके लिये उन्होंने अपनी शस्त्र ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा तोड़ दी। उस समय वे रथसे नीचे कूद पड़े और सिंह जैसे हाथीको मारनेके लिये उसपर टूट पड़ता हैं, वैसे ही रथका पहिया लेकर मुझपर झपट पड़े। उस समय वे इतने वेगसे दौड़े कि उनके कंधेका दुपट्टा गिर गया और पृथ्वी काँपने लगी ॥३७॥

भीष्म स्तुति

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ।
प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥३८॥

मुझ आततायीने तीखे बाण मार-मारकर उनके शरीरका कवच तोड़ डाला था, जिससे सारा शरीर लहूलुहान हो रहा था, अर्जुनके रोकनेपर भी वे बलपूर्वक मुझे मारनेके लिये मेरी ओर दौड़े आ रहे थे। वे ही भगवान् श्रीकृष्ण, जो ऐसा करते हुए भी मेरे प्रति अनुग्रह और भक्तवत्सलतासे परिपूर्ण थे, मेरी एकमात्र गति हो - आश्रय हो ॥३८॥

विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये।
भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षो-र्यमिह निरीक्ष्य हता गताः सरूपम् ॥३९॥

अर्जुनके रथकी रक्षामें सावधान जिन श्रीकृष्णके बायें हाथमें घोड़ोकी रास थी और दाहिने हाथमें चाबुक, इन दोनोंकी शोभासे उस समय जिनकी अपूर्व छबि बन गयी थी, तथा महाभारतयुद्धमें मरनेवाले वीर जिनकी इस छविका दर्शन करते रहनेके कारण सारूप्य मोक्षको प्राप्त हो गये, उन्हीं पार्थसारथि भगवान् श्रीकृष्णमें मुझ मरणासन्नकी परम प्रीति हो ॥३९॥

ललितगतिविलासवल्गुहास-प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः प्रकृतिमगन् किल यस्य गोपवध्वः ॥४०॥

जिनकी लटकीली सुन्दर चाल, हाव-भावयुक्त चेष्टाएँ, मधुर मुसकान और प्रेमभरी चितवनसे अत्यन्त सम्मानित गोपियाँ रासलीलामें उनके अन्तर्धान हो जानेपर प्रेमन्मादसे मतवाली होकर जिनकी लीलाओंका अनुकरण करके तन्मय हो गयी थीं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णमें मेरा परम प्रेम हो ॥४०॥

मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तः- सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ।
अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ॥४१॥

जिस समय युधिष्ठिरका राजसूय-यज्ञ हो रहा था, मुनियों और बड़े-बड़े राजाओंसे भरी हुई सभामें सबसे पहले सबकी ओरसे इन्हीं सबके दर्शनीय भगवान् श्रीकृष्णकी मेरी आँखोंके सामने पूजा हुई थी; वे ही सबके आत्मा प्रभु आज इस मृत्युके समय मेरे सामने खड़े हैं ॥४१॥

भीष्म स्तुति

तमिममहमजं शरीरभाजां हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ।
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥४२॥

जैसे एक ही सूर्य अनेक आँखोंसे अनेक रूपोंमें दीखते हैं, वैसे ही अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपने ही द्वारा रचित अनेक शरीरधारियोंके हृदयमें अनेक रूप-से जान पड़ते हैं; वास्तवमें तो वे एक और सबके हृदयमें विराजमान हैं ही। उन्हीं इन भगवान् श्रीकृष्ण को मैं भेद-भ्रमसे रहित होकर प्राप्त हो गया हूँ ॥४२॥